एग्री आर्टिकल्स
(कृषि लेखों के लिए ई-पत्रिका)
वर्ष: 02, अंक: 02 (मार्च-अप्रैल, 2022)
www.agriarticles.com पर ऑनलाइन उपलब्ध
© एग्री आर्टिकल्स, आई. एस. एस. एन.: 2582-9882

कृषि में जलसंरक्षण तकनीक

(*जितेन्द्र कुमार एवं नरेन्द्र कुमार चौधरी)
विद्यावाचस्पति छात्र, राजस्थान कृषि महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान
*coa.jitendra@gmail.com

21वीं सदी में पानी की कमी से प्रभावित होने वाले क्षेत्रों में उचित प्रबंध द्वारा पानी की उपलब्धता गुणवत्ता तथा प्रचुरता की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। जिसमें क्षेत्रीय जल भागीदारी के माध्यम से समन्वित जल ग्रहण प्रबंध ही एकमात्र उपाय है जिसे सामाजिक गतिशीलता के द्वारा महत्वपूर्ण साबित किया जा सकता है। अतः आज राज्य की जनता के लिये आवश्यक है कि वह जल की बूँद-बूँद का सदुपयोग करे एवं भूजल पुनर्भरण की ओर सक्रिय हो जाए और हम सब मिलकर इस प्राकृतिक अमूल्य धरोहर को अक्षुण्ण बनाये रखने के प्रयासों में जुट जायें। जल संरक्षण व समुचित उपयोग की विधियों व संरचनाओं को पुनः याद करके उपयोग करें जिससे हम अगली पीढ़ी को गौरव के साथ प्रचुर जल संसाधन की बहुमूल्य विरासत सौंप सकें।

उचित प्रबंधन:- किसी भी वस्तु का संरक्षण करने में सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि उस वस्तु विशेष का उपयोग बहुत ही मितव्यता के साथ आवश्यकता के अनुसार ही करें। उपलब्ध उपयोगी जल की 70 प्रतिशत मात्रा का प्रयोग कृषि कार्यों एवं खाद्यान्न उत्पादन में किया जाता है। वर्तमान समय तक भी हमारी कृषि पद्धति जल संरक्षण के संपूर्ण उपायों को नहीं उपयोगी बना पायी बल्कि प्रयोग किये गये जल की अधिकांश मात्रा व्यर्थ ही बहा दी जाती है। अधिकांश वर्षाजल भूमि की भौतिक दशा ठीक नहीं होने के कारण अपधावन के रूप में व्यर्थ बह जाता है। वर्तमान समय में अधिक मात्रा में प्रयोग किये जाने वाले उर्वरकों के कारण भी फसलों की जल मांग में बढ़ोत्तरी होती है। मृदा में जैसे-जैसे जैविक अंश की कमी आई है वैसे-वैसे जल धारण रखने की क्षमता में कमी आ रही है। इस प्रकार की स्थिति में हमें उपयोगी जल का बहुत मितव्ययता के साथ उपयोग करना चाहिए।

उन्नत सिंचाई तकनीकी का प्रयोग: परंपरागत सिंचाई विधियों के उपयोग से प्रति इकाई क्षेत्र में ज्यादा पानी देना पड़ता है। अतः वर्तमान समय में बहुत आवश्यक है कि सिंचाई की उन्नत विधियों का प्रयोग करेंजैसे: -

फव्वारा सिंचाई पद्धति का प्रयोग:- सिंचाई के विभिन्न पद्धतियों में फव्वारा सिंचाई को अपनाकर जल प्रबंधन को सुनिश्चित किया जा सकता है और जल संरक्षण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस विधि से सिंचाई में जल का अपव्यय नहीं होता है। अतः क्यारी विधि की अपेक्षा फव्वारा सिंचाई पद्धति उन्नत एवं आधुनिक होने के साथ-साथ प्रत्येक दृष्टिकोण से अत्यंत किफायती भी है। इस विधि में सिंचाई क्यारियों में न करके पाइपों एवं नोजलों के माध्यम से वर्षा के रूप में की जाती है। इस पद्धति में प्लास्टिक अथवा एल्युमीनियम पाइपों का खेत में जाल बिछाकर ऊँचे-नीचे रेतीले पहाड़ी व पथरीली सभी प्रकार की जमीन में सहजता से सिंचाई की जा सकती है। यह विधि जल संरक्षण के साथ-साथ मृदा अपरदन रोकने तथा भू-संरक्षण में भी सहायक है, क्योंकि इस विधि से सिंचाई करते समय जल बहकर बाहर नहीं जाता है। इस

विधि द्वारा सिंचाई करने से क्यारियों में की गई सिंचाई तुलना में 30-40 प्रतिशत पानी की बचत होती है। इस बचत का उपयोग सिंचित क्षेत्र बढ़ाने भूमिगत जलस्तर सुदृढ़ करने, अधिक जल दोहन के कारणों से होने वाली हानि को रोकने में किया जा सकता है।

बूँद-बूँद (ड्रिप) सिंचाई पद्धति का प्रयोगः- पानी की कमी देखते हुए इस अमूल्य संसाधन को आने वाली पीढ़ियों के लिये सुरक्षित रखने के लिये अति आवश्यक है कि उपलब्ध उपयोगी जल की दक्षता को बढ़ायें तथा बूँद-बूँद सिंचाई तकनीक को समय रहते अपनायें। जल प्रबंधन एवं उपलब्ध संसाधनों का भरपूर उपयोग के लिये ड्रिप प्रणाली एक अच्छा सिंचाई का साधन है। यह सिंचाई की नवीन पद्धति है, जिसके द्वारा पौधों को उसकी आवश्यकता के अनुसार मृदा के प्रकार, जलवायु फसल की मांग फसल की उम्र फसल की प्रकृति को ध्यान रखते हुए बूँद-बूँद करके पौधों की जड़ों के पास जल उपलब्ध कराया जाता है। बूँद-बूँद विधि को अपनाने से लगभग 60-70 प्रतिशत पानी की बचत होती है। यह पद्धति रेतीली मिट्टी एवं ऊबड़-खाबड़ भूमि के लिये भी बहुत उपयोगी है। इसके साथ ही श्रम व आर्थिक बचत के साथ फसल की गुणवत्ता भी प्राप्त होती है। इस विधि से पौधे में सिंचाई जल का धीमा किंतु सतत प्रयोग करते हुए इसे पौधों को जड़ में ड्रिपर की मदद से सुगमतापूर्वक पहुँचाया जाता है। इस प्रकार मृदा में सिंचाई जल की गहराई में प्रवेश होने पर जल वाष्पीकरण तथा बहाव जैसे कारणों से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। इससे पानी की 60-70 प्रतिशत मात्रा की बचत होती है।

घड़ा सिंचाई पद्धतिः- जहाँ पानी की ज्यादा कमी एवं भूमिगत जल लवणीय या क्षारीय प्रकृति के हों तथा क्षेत्र में सतही सिंचाई संभव नहीं हो वहाँ मिट्टी के घड़ों का प्रयोग करके फसल उत्पादन एवं फल उद्यान विकसित किये जा सकते हैं। इस पद्धति में 50-80 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है। इनको मृदा-सतह तक भूमि में दबा दिया जाता तथा आवश्यक अंतराल पर उसमें पानी डालते रहते हैं। जल की आवश्यकता प्रति हेक्टेयर क्षेत्र में लगाये गये घड़ों की संख्या उगाई जाने वाली फसल जल की गुणवत्ता एवं पानी भरने के अंतराल आदि कारणों पर निर्भर है। अधिकांश सब्जी वाली फसलों में इस पद्धति के उपयोग द्वारा लवणीय जल का प्रयोग भी किया जा सकता है। सतही सिंचाई विधि से अधिकांश सब्ज़ियाँ 2-3 डेसी सी./मी. की लवणता वाले जल से ही उगाई जा सकती है। घड़ा सिंचाई विधि द्वारा अत्यधिक लवणीय जल का सफलतापूर्वक उपयोग करके अच्छे जल के बराबर पैदावार प्राप्त कर सकते हैं।

फसलों को आवश्यकतानुसार पानी दें:- जिन क्षेत्रों में अभी पानी की थोड़ी बहुत उपलब्धता है उन क्षेत्रों में आज भी फसल की माँग से कई गुना पानी का प्रयोग कर देते हैं। जिससे फसल की उपज में भी कमी आ जाती है। फसल उत्पादन में सिंचाई के समय का जितना महत्त्व है उतना ही फसल की आवश्यकतानुसार जल की मात्रा का भी है। जल संरक्षण एवं उसके उचित प्रयोग के लिये आवश्यक है कि किसी फसल में कितनी सिंचाई और एक सिंचाई में कितने जल की मात्रा दी जाय यह जानना भी अति आवश्यक है कि किसी फसल के लिये जल की मात्रा आवश्यकता विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है। इनमें फसल की किस्म भूमि की किस्म बुवाई का समय जलवायु आदि प्रमुख हैं। विभिन्न फसलों के लिये सिंचाई की जल मांग एवं क्रांतिक अवस्थाएँ अलग-अलग होती है। अतः कम पानी उपलब्धता वाले क्षेत्रों के लिये आवश्यक है कि सिंचाई मात्रा क्रांतिक अवस्थाओं में करे तथा अतिरिक्त मात्रा में जल नहीं देकर केवल जल मांग के अनुसार ही सिंचाई करें।

फसल योजना तैयार करना:- पानी की उपलब्धता के अनुसार फसल योजना तैयार करनी चाहिए। पर्याप्त सिंचाई की सुविधा उपलब्ध होने पर मक्का-गेहूँ या बाजरा-गेहूँ फसल चक्र उपयुक्त होता है। जब एक ही सिंचाई उपलब्ध हो तो चना, तारामिरा दो सिंचाई उपलब्ध हो तो सरसों धनिया अधिक लाभप्रद रहता है।

तीन या तीन से अधिक सिंचाई मिलने पर गेहूँ की खेती करनी चाहिए। खरीफ में वर्षा न होने या देरी से होने की स्थिति में फरीफ में बुवाई नहीं करनी चाहिए ।

फसलों एवं किस्मों का चुनाव:- पानी की कमी वाले क्षेत्रों में सूखा सहने वाली, कम अवधि में पकने वाली फसलों का चयन किया जाना चाहिए। जैसे ज्वार बाजरा अरंडी मोठ मूंग तिल तारामीरा कुसुम व चंवला आदि। फसल विशेष के चयन के बाद उनकी ऐसी किस्मों का चुनाव करें जो कम समय में पककर तैयार हो जाती हों तथा अधिक उपज भी देती हों।

खडीन का निर्माण:- वर्षाजल को संग्रहित रखने क लिये ढालू खेतों में ढलान वाले क्षेत्र में वर्षाजल की उपलब्धता के अनुसार जल आगोर (कैचमेंट क्षेत्र) से उन्नत तकनीक द्वारा जल संग्रहण रखने आकृति (खडीन) में वर्षा के पानी को एकत्रित कर लिया जाता है। वर्षाजल को लंबे समय तक संग्रहीत रखने के लिये खडीन की पेंदी में चिकनी मृदा की एक पस्त या पॉलीथीन शीट डाल दी जाती है। जिससे अपक्षालन द्वारा पानी का नुकसान रुक जाता है। खडीन में संग्रहित पानी का उपयोग फसल उत्पादन के लिये किया जा सकता है। साथ ही खडीन क्षेत्र में रबी मौसम में अच्छी फसल प्राप्त की जा सकती है।

सोख्ता गड्ढा:- सोख्ता गड्ढे का उपयोग भूजलस्तर को स्थाई रखने हेतु प्रयुक्त किया जाता है। इन गड्ढों के माध्यम से अपवाह के रूप में बहने वाले फालतू जल का मृदा में पुनः भरण करके जलस्तर को स्थायित्व दिया जा सकता है। बरसाती पानी बहकर निकलने वाले मार्गों पर सोख्ता गड्ढा बनाना चाहिए। इस गड्ढे का आकार स्थानीय परिस्थिति के अनुरूप गोल, चौकोर या किसी भी आकार का हो सकता है। इस गड्ढे की लंबाई, चौड़ाई और गहराई वर्षाजल के वेग और उससे मिलने वाली संभावित मात्रा पर निर्भर करती है। । इसे हैंडपम्प के बहने वाले पानी के स्थान पर भी बनाया जा सकता है।

टांका:- यह जल संग्रहण का पारंपरिक तरीका है। इसका उपयोग मुख्यतया पश्चिमी राजस्थान में बहुत होता है। इसका उद्देश्य बरसात के पानी को एक पक्के कुंड या हौज में एकत्रित करना होता है, जिसको जरूरत के मुताबिक उपयोग में लिया जा सकता है। घरों की छतों पर बरसने वाले पानी को जमीन के नीचे बनाए गए टांकों में भरा जाता है और इसे अच्छी तरह ढक कर रखा जाता है। इसे टांकों का आकार जल ग्रहण क्षेत्र अर्थात छतों में वर्षाजल एकत्रित करने की क्षमता पर निर्भर करता है। टांका सभी तरफ से पक्का बनाया जाता है। ताकि पानी कहीं से भी रिसकर न बहे।

तलाइयों का निर्माण:- अधिक ढलान एवं बड़े खेतों के मध्य भाग में भी ढलानकर गड्ढे बनाए जा सकते हैं। जिससे इसमें चारों तरफ का बहने वाला बरसाती पानी आकर जमा हो सके। इसे पानी को लंबे समय तक सुरक्षित रखने के लिये तलाई के पेंदे में प्राकृतिक रूप से बनी तलाई की मृदा या पहाड़ों से निकाली गई मोहरम (चिकनी लेह) डाल सकते हैं। पानी सतह से वाष्प के रूप में होने वाली हानि को रोकने के लिये वाष्परोधी रसायनों का छिड़काव किया जा सकता है।

कंटूर खेती:- तीव्र ढलानदार क्षेत्रों में संपूर्ण वर्षाजल बहुत शीघ्रता के साथ बह जाता है तथा उपजाऊ मृदा की ऊपरी परत को भारी नुकसान होता है। इन क्षेत्रों में खेतों की ढलान के समांतर छोटे-छोटे भागों में बाँटकर सीढ़ीनुमा संरचना प्रदान की जाती है जिससे पानी का बहाव तीव्र नहीं हो पाता है और प्रत्येक खेत का पानी उसी क्षेत्र में रुक जाता है। खेत में एकत्रित होने वाले पानी को खडीन एवं टांका बनाकर भर लिया जाता है अथवा एनीकट द्वारा सुरक्षित तरीकों से निकाल दिया जाता है।

मृदा की जलधारण क्षमता में वृद्धि एवं प्रबंधन:- राजस्थान के सर्वाधिक क्षेत्र में रेतीली मृदा पाई जाती है। इनमें कार्बनिक पदार्थ की मात्रा 1 प्रतिशत से भी कम पाई जाती है। मृदाओं की जलधारण क्षमता बहुत कम

है। इससे वर्षा व सिंचाई जल का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है। मृदा की सिंचाई जलधारण क्षमता में वृद्धि करने के लिये उचित भू-परिस्करण खेतों की मेड़बंदी कृषि वानिकी कृषि उद्यानिकी के साथ ही प्रत्येक तीन वर्ष बाद 10 से 15 टन कार्बनिक खाद प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करना चाहिए।

उचित भू-परिष्करण:- उचित भू-परिस्करण के द्वारा खेत में उगने वाले खरपतवारों को नियंत्रित करने के अतिरिक्त भूमि में वर्षाजल को धारण करने की क्षमता बढ़ती है। जिसके परिणामस्वरूप वर्षाजल की अपधावन द्वारा क्षति कम होती है तथा खेत में नमी अधिक समय तक संग्रहीत रहती है। चिकनी मृदाओं में ग्रीष्म कालीन जोत और बालू मृदा में वर्षा के तुरंत पूर्व की गई जोत बहुत प्रभावी रहती है।

खेतों की मेड़ बंदी:- खेत का पानी खेत में रोकने के लिये खेत के चारों ओर मजबूत मेड़बंदी आवश्यक है। क्षति ग्रस्त मेड़ों की मरम्मत वर्षा से पूर्व कर लेनी चाहिए। आजकल सामान्य रूप से देखने को मिलता है कि दोनों ओर के खेत मालिक मेड़ को काटते हैं परंतु उन्हें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि मेड़बंदी पानी रोकने के अतिरिक्त मृदा एवं पोषक तत्वों को खेत से बाहर जाने से रोकती है ।

जैविक खादों का प्रयोग:- भूमि में लगातार अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करने से मृदा की जल धारण करने की क्षमता में कमी आती है तथा सिंचाई एवं वर्षाजल की अधिकांश मात्रा खेत से फालतू बह जाती है। अतः भूमि की उर्वराशक्ति बनाये रखने व अधिक पैदावार प्राप्त करेन के लिये आवश्यक है कि भूमि में अधिक मात्रा में जैविक खादों का प्रयोग करना चाहिए जिससे भूमि की उर्वरता के साथ-साथ अधिक नमी संग्रहण में महत्त्वपूर्ण योगदान मिलेगा। कार्बनिक खादों में गोबर की खाद, कंपोस्ट खाद, हरी खाद, नीम खली तथा वर्मी कंपोस्ट के प्रयोग से मृदा जल संग्रहण की क्षमता में बहुत वृद्धि होती है तथा लंबे समय तक नमी बनी रहती है।

कृषि वानिकी:- शुष्क खेत में नमी व भूमि संरक्षण के लिये कृषि वानिकी बहुत महत्त्वपूर्ण है। वृक्ष भूमि को हवा व पानी द्वारा होने वाले कटाव से बचाते हैं। भूमि में पत्तियाँ मिलने से कार्बनिक पदार्थ बढ़ता है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति तथा पानी ग्रहण करने की क्षमता बढ़ती है। पेड़ अपधावन द्वारा बहने वाले पानी की गति में अवरोध उत्पन्न कर भूमि कटाव को कम करते हैं। जिन क्षेत्रों में सघन वन होते हैं, वहाँ वातावरण में नमी अधिक पाई जाती है जिससे ठंडक पैदा होती है और वर्षा का आवागमन भी बढ़ता है। इसके अतिरिक्त वृक्षों से चारा जलाऊ लकड़ी गोंद फल व अन्य उत्पाद भी प्राप्त होते हैं। वृक्षों के साथ फसल उगाने से फसलों को अधिक नमी व पोषक तत्व प्राप्त होते हैं।

कृषि उद्यानिकी:- कृषि उद्यानिकी पद्धति में फलदार पौधों की दो पंक्तियों के मध्य शीघ्र पकने वाली फसलें उगायी जा सकती हैं। शुष्क क्षेत्र में सफलता पूर्वक उत्पादन देने वाले फल वृक्ष बेर, लसोहडा, बेलपत्र, आंवला, फल उत्पादन के साथ-साथ जलस्तर को गिरने से रोकने में महत्त्वपूर्ण भागीदारी निभाते हैं। इन वृक्षों के लगे रहने से मृदा कटाव में कमी तथा मृदा की जलधारण क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है। इस पद्धति में फल की पैदावार के अतिरिक्त फसल उत्पादन भी प्राप्त कर आमदनी बढ़ाई जा सकती है।

मृदा जल हानि में कमी:- राजस्थान के कृषिमय क्षेत्र में केवल 25 प्रतिशत क्षेत्र में सिंचाई सुविधा उपलब्ध है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि राजस्थान के संदर्भ में मृदा में नमी के संरक्षण का कार्य महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मई एवं जून माह के दिनों तापक्रम 40 से 45 डिग्री सेंटीग्रेड हो जाता है। इन क्षेत्रों में वायु की गति भी तेज रहती है। अधिक तापमान व गतिशील वायु की वजह से वाष्पीकरण एवं उत्संवेदन की गति तेज हो जाती है। अत्यधिक वाष्पीकरण के कारण जल का ह्रास तीव्र गति से होता है तथा मृदा नमी में कमी हो जाती है। असिंचित क्षेत्रों में नमी संरक्षण हेतु निम्न उपाय किये जाने चाहिए:-

खेतों की सतह पर पलवार का प्रयोग:- शुष्क कृषि क्षेत्रों में वाष्पीकरण द्वारा भूमि से नमी की अधिक हानि होती है जिसके कारण वर्षा रहित दिनों में पौधे नमी के अभाव में सूखते रहते हैं। संचित नमी के वाष्पीकरण द्वारा होने वाली हानि को रोकने के लिये मृदा सतह पर फसलों के अवशेष, गन्ना, अरहर की सूखी पत्तियाँ, सूखी घास, गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद, लकड़ी का बुरादा व पॉलीथीन की चादर पलवार के रूप में भूमि की सतह पर प्रयोग करनी चाहिए। वर्षा एवं सिंचाई के बाद कुदाली चलाकर भूमि की सतह पर ढीली मिट्टी की लगभग 5 सेमी, मोटी परत बनाकर भी मृदा नमी को संरक्षित किया जा सकता है।

वाष्पोत्सर्जन हानि कम करना:- जिन स्थानों पर वातावरण गर्म एवं शुष्क होता है वहाँ पौधों में उपस्थित पानी की अधिकांश मात्रा पौधों की सतह एवं पत्तियों द्वारा वाष्पोत्सर्जन के रूप में बाहर निकल जाती है। वाष्पोत्सर्जन कम करने के लिये वाष्पोत्सर्जन विरोधी पदार्थ जैसे केओलिनाइट, सक्सीनिक अम्ल, एबसेसिस अम्ल, चूना पानी का प्रयोग पौधों की पत्तियों एवं तने पर करना चाहिए जिससे पौधे की सतह से होने वाली पानी की हानि को काफी हद तक रोका जा सकता है।

खरपतवार नियंत्रण:- खरपतवार पोषक तत्व, नमी, स्थान तथा प्रकाश आदि के लिये प्रतियोगिता कर फसल की वृद्धि, उपज व गुणों में ह्रास करते रहते हैं। खरपतवार का जड़ तंत्र फसलों की अपेक्षा ज्यादा विकसित होने के कारण भूमि की गहराई से नमी का अवशोषण करते हैं। अतः मृदा में नमी को बचाए रखने के लिये आवश्यक है कि खरपतवार प्रारंभिक अवस्था से ही नियंत्रित होने चाहिए, खरपतवारों को भू-परिष्करण गुड़ाई और खरपतवारनाशी सभी के समन्वित प्रयोग द्वारा प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है।

E-Magazine for Agricultural Articles